# - पाँचवा अध्याय -

## प्रायोगिकता की दृष्टि से 'पोस्टर' नाटक की विशेषताएँ

# पाँचवा अध्याय

## प्रायोगिक दृष्टि से 'पोस्टर' नाटक की विशेषताएं

### पृष्ठ भूमि :

प्रयोगशीलता नाटक का महत्वपूर्ण अंग है, क्योंकि इसके अभाव में नाटक अपूर्ण रहता है। नाटक मंचीय संभावनाओं को लेकर चलनेवाली एक महत्वपूर्ण साहित्य विधा है। वह एक साथ श्रवण एवं मंचन दोनों स्तरों पर दर्शकों को आनंदानुभूति, सहानुभूति प्रदान करती है। अत: नाटक को आँखो का यज्ञ कहा है, क्योंकि "कथासाहित्य की तुलना में नाटकीय घटना प्रत्यक्ष सजीव बनकर मंच पर प्रस्तुत होती है। कथा की तरह पाठक को घटना समझाने के लिए बुद्धिपर या कल्पना पर जोर देना नहीं पडता।"[१] उपन्यास साहित्य, कथा साहित्य वर्णनप्रधान रहता है। नाटक में वर्णन के लिए कोई स्थान नहीं रहता। नाटककार को सशक्त संवाद एवं नाटकीय घटनाओं द्वारा ही कथ्य की अभिव्यक्ति करनी पड़ती है। इस दृष्टि से नाटककार को अधिक सजगता से नाटक लिखना पड़ता है।

नाटक मानवी जीवन से जुड़ी हुअी साहित्य विधा है। वह एक जीवनस्पर्शी कला है। मनुष्य जीवन का समग्र चित्रण कर, उसका मनोरंजन करना, समाज के सांस्कृतिक मूल्य बढ़ाना नाटक के महत् उद्देश्य है। वैदिक काल से ही नाट्यविधा इस उद्देश्य की पूर्ति करती आयी है। इसी आधारपर भरतमुनि के 'नाटयशास्त्र' में इसे पाँचवा वेद कहा गया है (नाट्यस्तु पंचमो वेद: )।और नाट्यशास्त्र के अनुसार इस पंचम वेद की रचना भी ब्रहमाने अन्य वेदों से सामग्री लेकर की। ..... अर्थात

ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य, यजुर्वेद से अभिनय, सामवेद से गीत और अथर्ववेद से रस लेकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष देनेवाला यह नाट्यवेद बनाया और सबसे पहले यह नाट्यवेद भरत को सिखाया।"[2] स्पष्ट है, कि नाटक लोकजीवन, लोकरंजन एवं लोकज्ञान से जुड़ी हुई जनहितकारी साहित्यविधा है। अपनी इसी विशेषता के कारण नाटक को पाँचवा वेद कहकर प्रतिष्ठित किया गया है। नाटक एक दृश्यकाव्य है। प्राचीन काल से ही नाटक में पाठ्य के साथ-साथ अन्य कलाओं को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। गीत, नृत्य, चित्र, शिल्प, संगीत,अभिनय आदि कलाओं के समन्वय से नाटक एक सर्वश्रेष्ठ कला, साहित्य की सर्वोत्तम विधा बन गया है। अभिनेयता एवं मंचीयता नाटक की सर्वोपरी विशेषताएं है,क्योंकि नाटक मंचपर खेली जानेवाली विधा है। अत: रंगमंचीय आयामों को छोड़कर नाटक का विचार ही नहीं हो सकता। इस संदर्भ में नेमिचन्द्र जैन का कथन यहाँ द्रष्टव्य है, "रंगमंच पर अभिनेताओं द्वारा प्राणप्रतिष्ठा के बिना नाटक को सम्पूर्णता प्राप्त नहीं होती,और इसलिए रंगमंच से अलग करके नाटक का मूल्यांकन उसके विविध अंगों और पक्षों पर विचार अपूर्ण ही नहीं भ्रामक हो जाता है। संसार के नाटक साहित्य के इतिहास में कहीं भी नाटक को रंगमंच से अलग करके, केवल साहित्यिक रचना के रूप में नहीं देखा जाता; और रंगमंच तथा उसकी आवश्यकताओं के पारखी या जानकार ही नाटक के असली समालोचक हो सकते हैं, होते हैं, और माने जाते हैं।"[3] अर्थात प्रायोगिकता नाटक का अनिवार्य अंग है, उसके बिना नाटक का कोई मूल्य नहीं रह जाता।

संस्कृत नाट्यपरम्परा से लेकर आधुनिक नाटक तक हिंदी नाटक रंगमंचीय दृष्टि से विकसनशील रहा है। आधुनिक काल के प्रारंभिक चरण में नाटक लिखते समय मंचीय संभावनाओं का इतना खयाल नहीं रखा जाता था। उस काल में अधिकांशत: नाटक पठन-पाठन की ही विधा रही ।

नाटक की ओर प्रायोगिक दृष्टि से अधिक ध्यान नहीं दिया गया। द्विवेदी युग में पारसी नाटक मंडलियों द्वारा रंगमंच पर नाटक खेले जाते थे, परंतु वे केवल चमत्कार प्रदर्शन तक ही सीमित रहे। प्रसाद युग में भी रंगमंचीय दृष्टि से नाटक की कोई विशेष उन्नति नहीं हुई। प्रसादोत्तर युग में रंगमंचीय संभावनाओं को लेकर नाटक का विचार किया जाने लगा। मंचीय सफलता की दृष्टि से नाटकीय रचनाविधान में घटना, प्रस्तुति में सुगमता, मंचीय सादगी, दृश्यसज्जा में वास्तवता लाने के प्रयास होने लगे। मंचीय आयामों के नवनवीन प्रयोग से हिंदी नाटक रंगमंच पर सफलता से अभिनीत होने लगा। इसमें धर्मवीर भारती का "अंधायुग", मोहन राकेश का "आषाढ का एक दिन", "आधे-अधूरे", जगदीशचंद्र माथुर का "कोणार्क" "पहला राजा" डा. लक्ष्मीनारायण लाल का "करफ्यु", "अब्दुल्ला दिवाना" आदि नाटक विशेष सफल रहें। ज्ञानदेव अग्निहोत्री, गिरिश रस्तोगी आदि नाटककार भी महत्वपूर्ण रहें। हिंदी रंगमंच को एक नयी दिशा देने में इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा। स्वातंत्र्योत्तर आधुनिक नाटककारों में डा. शंकर शेष का भी स्थान विशेष महत्वपूर्ण रहा। डा. शेष ने अपने हर नाटक में इन रंगमंचीय संभावनाओं का खयाल रखकर नाटक को सही अर्थ में दृश्यकाव्य की कसौटी पर प्रमाणित किया। प्रायोगिकता उनके नाटकों की महत्वपूर्ण विशेषता रही। उनका हर नाटक रंगमंच की दृष्टि से एक नया प्रयोग रहा। अभिनय, दृश्यसज्जा, पात्रयोजना, विषय, शिल्प, शैली आदि सभी दृष्टि से उन्होंने अपने नाटकों में नित-नूतन प्रयोग किए। उन्होंने कुल मिलाकर इक्कीस पूर्णांक नाटक लिखे। इसमें से केवल "कालजयी" को छोड़कर शेष सभी नाटक रंगमंच पर सफलता से खेले गए हैं और आज भी खेले जाते हैं। रंगमंचीय संभावनाओं का उन्होंने विशेष ध्यान रखा। उनके ही शब्दों में, "नाटक लिखने से पहले मैं कल्पना-चक्षुओं से उसे पूरा देखता हूँ। कल्पना के भव्य मंच पर एक अकेले दर्शक के सम्मुख

होते नाटक का जो सुख मुझे मिलता है, वह वर्णनातीत है।"[3] इसप्रकार डा. शेष ने रंगमंच को सामने रखकर ही अपने नाटक लिखे, जिससे मंचीय सफलता उनके नाटकों की एक स्वतंत्र पहचान बनी।

१. "पोस्टर" नाटक में मंचीयता :

१९७७ में लिखा "पोस्टर" डा. शेष की बहुमुखी प्रतिभा की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। प्रस्तुत नाटक में डा. शेष ने शिल्प, शैली, प्रस्तुति सभी दृष्टि से नूतन प्रयोग किए हैं। "पोस्टर" नितांत प्रायोगिक नाटक रहा है। प्रायोगिक एवं व्यावसायिक रंगमंच पर पोस्टर की सफलता विशेष सराहनीय रही। निर्देशक श्री. जयदेव हट्टंगडी ने इसके १२५ प्रयोग कर रंगमंचीय सफलता का नया कीर्तिमान स्थापित किया। दिल्ली, मुम्बई, सारंगपुर, देहरादून, पुणे आदि स्थानोंपर हट्टंगड़ीजी द्वारा किए गए "पोस्टर" के प्रयोग विशेष सफल रहे। आर.एस.विकल के निर्देशन में 'द्रांस यमुना थियेटर वर्कशाप' द्वारा श्रीराम सेन्टर, दिल्ली में १९८२ में यह नाटक सफलता से खेला गया। इसीतरह तनवीर अख्तर के निर्देशन में "इप्टा" संस्था द्वारा पटना में अगस्त १९८५ में यही नाटक सफलता से अभिनीत हुआ।"[4] "पोस्टर" की रंगमंचीय सफलता अपने आप में उसकी मौलिक विशेषता रही।

"पोस्टर" की रंगमंचीय सफलता में उसकी प्रायोगिक विशेषताएं विशेष महत्त्वपूर्ण रही हैं। अभिनयगत मौलिक प्रयोग, मंचीय निर्देश, प्रकाश योजना का सृजनात्मक-सार्थक प्रयोग, लोकसंगीत एवं कीर्तन शैली का समन्वयात्मक नवीन प्रयोग, मंचसज्जा की सादगी, अभिनय संपन्न भाषा एवं सशक्त, मार्मिक संवाद "पोस्टर" की मंचीय सफलता में विशेष सहायक रहे। "पोस्टर" की मंचीय विशेषताएं निम्नांकित शीर्षकों के अंतर्गत विस्तार से देखी जा सकती हैं।

१.१ दृश्यसज्जा :

इसे दृश्यबंध भी कहते है। दृश्यसज्जा मंचीयता का महत्वपूर्ण उपकरण है, जिसके माध्यम से नाटक के अभिनय एवं प्रस्तुति में सजीवता आती है। मंचीय उपकरणों के माध्यम से नाटयानुकूल परिवेश की निर्मीति करना, दृश्यसज्जा का कार्य है। इस दृष्टि से रंगमंच पर परदों की व्यवस्था, प्रवेशद्वार, प्रस्थान द्वार, घटना तथा प्रसंगानुसार आवश्यक उपकरण मंचपर रखे जाते हैं। दृश्यसज्जा नाटक में वास्तवता का आभास निर्माण कर प्रस्तुति में स्वाभाविकता लाती है, जिससे नाटकीय क्रियाव्यापार सुकरता से दर्शकों तक पहुँचाने में सहायता होती है।

संस्कृत नाट्यपरम्परा में दृश्यसज्जा का विशेष आयोजन किया जाता था। प्रवेशद्वार, निर्गमन द्वार, परदों की व्यवस्था, रंगपीठ, रंगशीर्ष, नेपथ्य आदि रंगमंचीय सूचनाएँ नाट्य प्रस्तुति में आवश्यक रहती थीं। आधुनिक काल तक आते-आते दृश्यसज्जा में महत्वपूर्ण परिवर्तन हो गए। पारम्परिक दृश्यसज्जा के स्थान पर समसामयिक यथार्थबोध के अनुसार दृश्यसज्जा की व्यवस्था की जाने लगी। नाटक के कथ्य के अनुसार परिवेश के अनुसार मंचीय उपकरण दृश्यसज्जा का अनिवार्य अंग बन गए। प्रायोगिक धरातल पर नाटक में दृश्यसज्जा का सार्थक प्रयोग किया जाने लगा। एक ही उपकरण द्वारा अधिक दृश्यबंधो से काम लेना, मंचीय उपकरणों की सादगी, दृश्यबंधों में चमत्कार-प्रदर्शन के स्थान पर सरलता, यथार्थ दृष्टि आदि दृश्यसज्जागत परिवर्तन स्वातंत्र्योत्तर नाटक साहित्य की मौलिक विशेषता बन गए।

"पोस्टर" कीर्तनशैली में प्रस्तुत रचना होने से उसी के अनुसार दृश्यसज्जा रखी जा सकती है। मंचपर कीर्तनकार, उसका साथी, वाद्यवृंद

एवं दर्शकों की ओर पीठ किए हुए श्रोता गण उपस्थित रहते हैं। मंच के कोने में वाद्यवृंद का स्थान है, जिसमें तबला, हार्मोनियम, मंजीरे, मृदंग आदि वाद्य रखे जा सकते हैं। कीर्तनकार के पीछे एक साधारण रंग का परदा तथा कीर्तन में प्रस्तुत आदिवासी कथा में स्वामी अखंडानंद के लिए एक आसन आदि से काम चल सकता है। वैसे इस नाटक में किसी विशेष मंचसज्जा की आवश्यकता ही नहीं है, बल्कि उसे पूरी तरह से नकारने की ही कोशिश की गयी है।"[6] दृश्यपरिवर्तन के लिए परदों की जगह पर प्रकाश व्यवस्था का सृजनात्मक प्रयोग किया गया है। नाटकीय घटनाओं में विविध दृश्य प्रस्तुत होते है, जैसे - पटेल की अलीशान कोठी का दृश्य, आदिवासी जंगल का दृश्य पटेल के कारखाने में काम कर रहे मजदूरों का दृश्य, घर में श्याम के समय बातें कर रहे कालु एवं चैती का दृश्य, रात्री के समय बीडी पीते हुए, बातें करते हुए अलग-अलग समूहों में मजदूरों का दृश्य आदि। इन दृश्यों की प्रस्तुति में किसी मंचीय उपकरणों की, दृश्यसज्जा की आवश्यकता नहीं पडती। नाटककार के सशक्त संवाद, अभिनय संपन्न भाषा, एवं मार्मिक गीत ही हर दृश्य को मूर्त करते हैं, जिससे नाटक प्रस्तुति में मंचीय सादगी "पोस्टर" की विशेषता बन गयी है। नाटककार का यह प्रयोग निश्चय ही सराहनीय रहा है। इस संदर्भ में यहाँ सुनीलकुमार लवटेजी का कथन दृष्टव्य है, " अपने नाटकों में रंग-मंचीय सज्जा को नकारने की डा.शेष की प्रवृत्ति उनकी नाट्य विषयक विशेषता बन गई है। डा. शेष दर्शकों की तर्कबुद्धि पर विश्वास रखने-वाले नाटककार है। नाटक में हर दृश्य को उसके मूल परिप्रेक्ष्य में अभिव्यक्त करना उनके विचार में कृत्रिमता लाना है। वे अपने नाटकों की रचना ही ऐसी कर देते हैं, कि जिसमें एक या दो दृश्यबंधो से काम चल सके।"[7]

इसप्रकार रंगमंचीय सादगी दृश्यबंध की सरलता "पोस्टर" की अनोखी विशेषता बन गयी है।

## १.२ प्रकाशयोजना :

प्रकाशयोजना या प्रकाशव्यवस्था मंचीय का महत्वपूर्ण उपकरण है। नाट्यप्रयोग की कुशल प्रस्तुति में प्रकाशव्यवस्था का अपना महत्व रहता है। विद्युत प्रकाश की उपलब्धि से पूर्व, प्राचीन नाटकों में विद्युत-प्रकाश के स्थान पर मशालों, गैसबत्तियों, मोमबत्तियों का प्रयोग किया जाता था, किंतु उससे अपेक्षित प्रभावनिर्मिति नहीं होती थी। बिजली की महत्वपूर्ण खोज से नाट्य प्रस्तुति में नये तकनीक आ गए। विद्युत प्रकाश का प्रयोग नाटक की प्रभावी प्रस्तुति में बड़ा सहयोगी रहा। आधुनिक काल में प्रकाश व्यवस्था नाट्य प्रस्तुति का महत्वपूर्ण अंग बन गयी है।

संस्कृत नाट्य प्रस्तुति में प्रकाशयोजना का उपयोग केवल दृश्यबंध को आलोकित करने एवं दर्शकों को नाटकीय क्रिया-व्यापार दिखाने तक ही सीमित था। वर्तमान समय में रंगमंच पर दृश्यबंध के अनुसार प्रकाश तीव्र, मंद करके नाटकीय प्रभाव निर्मिति में सहायता होती है। दृश्यपरिवर्तन के लिए भी परदे की जगह पर प्रकाश का कौशलपूर्ण उपयोग किया जाता है। दो दृश्यबंध के बीच थोडी देर के लिए अंधेरा कर दृश्य-परिवर्तन में सरलता आ गयी है। इसीतरह किसी अभिनेता के अभिनय की ओर दर्शकों का ध्यान खास तौर पर आकर्षित करने के लिए प्रकाशव्यवस्था का कलात्मक प्रयोग किया जाता है। नाटक में अनुकूल वातावरण निर्मिति तथा पात्रों के आंतरिक द्वन्द्व को दर्शाने में भी प्रकाशयोजना की विशेष सहायता मिलती है। सुलभा देशपांडेजी के मतानुसार "प्रकाश मंचीय नाटक का प्रथम शब्द है।"[८] प्रकाश व्यवस्था से ही नाटक का दृश्यत्व मूर्त होता है। नाटकीय कथ्य तथा दृश्यबंध के अनुसार प्रकाशव्यवस्था उद्दीपक, कलात्मक, शांत, सम्मोहक बना दी जाती है, जिससे पूरा नाटक उचित प्रभाव के साथ प्रस्तुत होता है।

"पोस्टर" नाटक में भी प्रकाशव्यवस्था का कुशलतासे प्रयोग किया गया है। प्रकाशव्यवस्था के नये तकनीक से "पोस्टर" के दृश्यबंध में अपेक्षाकृत अधिक सरलता आ गयी है। नाटक में प्रकाशव्यवस्था मुख्यतया तीन रूपों में क्रियाशील रही है - १) दृश्यबंध की स्वाभविक प्रस्तुति में सहायक, २) दृश्यपरिवर्तन में परदों की जगह पर, ३) कलाकारों के अभिनय की ओर दर्शकों का ध्यान आकृष्ट करने के लिए। प्रकाशव्यवस्था के इस कौशलपूर्ण प्रयोग से "पोस्टर" की मंचीय प्रस्तुति प्रभावी बन गयी है।

अलग-अलग दृश्यबंधों में प्रकाश व्यवस्था का सार्थक प्रयोग किया गया है। नाटक में कीर्तन के समय मंच पर पूरा आलोक रहता है। अन्य दृश्यबंधों के समय जैसे - पटेल की आलीशान कोठी का दृश्य, आदिवासी नृत्य, पटेल के कारखाने में काम कर रहे मजदूर आदि दृश्यों में प्रकाश व्यवस्था की ब्लैक आउट पध्दति का प्रयोग किया गया है। इस संदर्भ में इस नाटक के निर्देशक श्री. जयदेव हट्टंगडी का मत यहाँ दृष्टव्य है, "जिस पात्र का मंच पर अभिनय हो रहा है, उस पर पूरा प्रकाश आ जाता है। मंच का शेष भाग अंधेरे में रखा जाता है। यदि पूरा समूह मंच पर गीत गा रहा है, या नृत्य कर रहा है, या काम कर रहा है, तो मंच पूरा पूरा प्रकाश आ जायेगा।"[९] इसप्रकार "पोस्टर" में अलग-अलग दृश्यबंध में प्रकाशव्यवस्था का मौलिक प्रयोग किया गया है। "पोस्टर" की प्रकाशव्यवस्था नाटकीय प्रस्तुति में तथा उसकी प्रभाव निर्मिति में बड़ी सहयोगी एवं सार्थक रही है।

प्रकाशव्यवस्था के संदर्भ में नाटककार द्वारा दिए हुए रंगनिर्देश भी बड़े महत्वपूर्ण हैं। दृश्यबंध में सृजनात्मक प्रकाशव्यवस्था की ओर नाटककार का अधिक ध्यान रहा है। जैसे नाटक के अंतिम अंश में

"भोर भयी जन जागो" यह मजदूरों को जागृति का संदेश देनेवाला गीत मंचपर प्रस्तुत होता है। उस समय मंच पर पूर्ण अंध:कार रहता है। जैसे ही गीत समाप्त होता है, धीरे-धीरे पूरे मंच पर प्रकाश आ जाता है, और "काम करो भाई काम करो" की लय मजदूरों में बढ़ती दिखाई देती है। इसीतरह आदिवासी कथा के अंत में आरती के समय धीरे-धीरे प्रकाश कम होता है। पूर्ण अंधेरा किया जाता है। केवल कीर्तनकार द्वारा आरती का स्वर सुनायी पडता है। इसी बीच सभी पात्र फिर श्रोता रूप में उनके सामने बैठ जाते है। आरती समाप्त होते ही फिर मंच पर पूरा प्रकाश आ जाता है। यहाँ दृश्यपरिवर्तन के लिए प्रकाश का सार्थक प्रयोग किया गया है।

इसप्रकार "पोस्टर" की प्रकाशव्यवस्था दृश्यबंध में सार्थक, प्रतिकात्मक, अभिनय एंवं प्रस्तुति में प्रभावोत्पादक तथा मंचीय सज्जा में सहायक रही है। दृश्यबंध में प्रकाशव्यवस्था का किया गया सृजनात्मक प्रयोग नाटककार का अद्भुत कौशल रहा है।

## १.३ पार्श्व ध्वनि एवं संगीत :

नाटक की मंचीय प्रकाशयोजना की भाँति पार्श्व ध्वनि संगीत संयोजन भी मंचीय आयाम का एक महत्वपूर्ण उपकरण है। स्वाभाविक आर्कषक, सम्मोहक नाट्य प्रस्तुति में पार्श्व ध्वनि-संगीत का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। प्राचीन काल में नाटक में पार्श्व ध्वनि-संगीत का प्रयोग भावात्मक वातावरण की सृष्टि के लिए किया जाता था। नाट्य प्रस्तुति में आवश्यक ध्वनियाँ नेपथ्य से प्रस्तुत की जाती थी। संस्कृत नाट्यव्यापार में उसके लिए शंख, डमरू, वीणा, कास्यताल, मृदंग आदि का प्रयोग होता था, और नाटक में विभिन्न रसों की तथा रागों की

सृष्टि के लिए अनुकूल वातावरण निर्मिति की जाती थी। आज इसके स्थान पर ध्वनि निर्मिति यंत्र तथा ध्वनि विस्तारक यंत्र प्रयुक्त होते हैं। विभिन्न प्रकार के कॅसिओ भी प्रयोग में लाये जाते हैं। आज ध्वनि-संगीत योजना मंचीय आयाम का आवश्यक अंग बन गयी है।

आधुनिक नाटकों में संगीत-योजना को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो रहा है। पहले नाटकों में संगीत का मुक्त प्रयोग किया जाता था। आज संगीत का कलात्मक, सार्थक प्रयोग किया जा रहा है। दृश्यबंध की प्रभावात्मकता बढ़ाने के लिए, दृश्य के भावबोध को उभारने के लिए पात्रों की मानसिकता, अंतर्द्वन्द्व एवं घटनातथ्य का बोध कराने के लिए संगीत-ध्वनियाँ भिन्न-भिन्न रूप से प्रयुक्त की जाती हैं। ध्वनियंत्रो की उपलब्धि से पूर्व मंच पर अभिनेताओं को दर्शकों तक आवाज पहुँचाने के लिए अधिक तेज आवाज में बोलना पड़ता था। आज ध्वनियंत्रो की महत्वपूर्ण उपलब्धि से इस दुष्कर कार्य में सुलभता आ गयी है। "निर्देशक-कलाकार संगीत-ध्वनियों से स्वतंत्र दृश्य-योजना तक कर रहे हैं। वे आधुनिक रंग-प्रक्रिया में अभिनय और संगीत-ध्वनि से उद्यान के मनोरम वातावरण तक की सृष्टि कर डालते हैं। गम्भीर, किंचित शून्य और करुण संगीत-ध्वनि से सूनापन, उदासी एवं पारिवारिक त्रासदी के चित्र, सफलता पूर्वक मंचस्थ हुए हैं। श्मशान की रिक्त वीरानगी से लेकर सम्मोहक वातावरण तक उपस्थित करने में संगीत ध्वनियाँ सहायक सिद्ध हुई हैं।"[10] नाटक की रंगमंचीय प्रस्तुति में ध्वनि-संगीत का प्रयोग बहुत ही उपोद्य रहा है।

"पोस्टर" नाटक में पार्श्व ध्वनि संगीत का कौशलपूर्ण प्रयोग किया गया है। कीर्तनशैली में प्रस्तुत रचना होने से पूरा नाटक संगीत नाटक का आभास निर्माण करता है। कीर्तनशैली एवं लोकसंगीत से

मनोहारी संगम से नाटक का दृश्यत्व सरस बन गया है। नाटक में ध्वनि-संगीत संयोजन नाटकीय शैली के अनुसार ही किया गया है। "आविष्कार" द्वारा प्रस्तुत "पोस्टर" नाटक के संगीत निर्देशक श्री. शांक नीलजी ने नाटक की कीर्तन शैली एवं उसमें प्रस्तुत आदिवासी कथा के अनुरूप ही संगीत योजना की है।[११] कीर्तनशैली के अनुसार ही इसमें भजन, पद या अभंग गायन, श्लोक गायन, सद्गुरु वंदना, गणेशवंदना, प्रार्थना, आरती आदि भक्तिपरक गीत पारम्पारिक संगीत में प्रस्तुत होते हैं, तो लोककथा के अनुरूप उसमें लोकगीत, लोकनृत्य, लोकसंगीत का सरस प्रयोग हुआ है। लोकसंगीत एवं भक्तिसंगीत का सुरीला संगम "पोस्टर" के रसास्वाद को वृध्दींगत करता है। नाटक में कीर्तनकार शास्त्रीय संगीत, मराठी नाट्य संगीत, भजन, लोकसंगीत का खुलकर प्रयोग करता है। अत: "पोस्टर" संगीत नाटक का एक विलक्षण समवेत आस्वाद कराता है।[१२] "पोस्टर" की संगीत योजना अपने आप में बड़ी अनूठी रही है।

"पोस्टर" में संगीत-ध्वनियों का प्रयोग दृश्यविधान की सार्थक प्रस्तुति में बड़ा सहयोगी रहा है। मजदूरो के काम की गति दर्शाने के लिए, पात्रों के आंतरिक संघर्ष की अभिव्यक्ति के लिए, दृश्य के भाव प्रकाशन के लिए मुख्य रूप से संगीत ध्वनियों का सार्थक प्रयोग किया गया है। नाटक में मजदूर माईम से काम करते है। उनके काम की गति ढ़ोल की ताल से दर्शायी गयी है, जैसे - " अब ढ़ोल की आवाजें जोर-जोर से ..... उसी ताल पर ..... निम्नांकित शब्दों में काम का आभास ..... धीरे-धीरे ढ़ोल की ताल तेज होती जाती है ..... जैसे काम की गति तेज हो ..... ढोल फिर तेज तालसे बजने लगते हैं - मजदूर अधिक तेजी से काम करने लगते हैं।"[१३] इसीतरह अखंडानंद द्वारा स्वर्ग की तस्वीर दिखाते समय भी संगीत का सार्थक प्रयोग किया गया है।

जैसे - " ..... एक व्यक्ति सजसिक वेशभूषा में बैठा है। एक सुंदर स्त्री उसे सोमरस का प्याला पिला रही है। साथ ही इसप्रकार का नृत्य-संगीत कि जैसे वह व्यक्ति नाच देख रहा हो।"[१४] इसप्रकार यहाँ संगीत का प्रयोग दृश्य के भाव प्रकाशन में नितांत सहयोगी रहा है। नाटक में प्रयुक्त संगीत-ध्वनियाँ कीर्तन शैली के अनुरूप उचित वातावरण निर्मिति में भी सहायक सिद्ध हुयी है। नाटक के आरंभ में तथा बीच-बीच में भी गायन से पहले तानपुरे की ध्वनियाँ प्रस्तुत होती हैं, जो कीर्तन के लिए अनुकूल वातावरण को निर्मित करती हैं।

इसप्रकार "पोस्टर" नाटक में पार्श्व ध्वनि-संगीत नियोजन नाटक की प्रस्तुति में सहायक, सरस एवं सार्थक सिद्ध हुआ है। एक ओर वह दृश्य के भाव को उद्घाटित करता है, तो दूसरी ओर कीर्तन शैली एवं लोकसंगीत के अनुरूप उचित वातावरण निर्मिति करता है। पात्रों की मानसिकता के अनुसार उल्हासित, जोशीले, शांत, संघर्षपूर्ण गीतयोजना में सार्थक संगीत का प्रयोग विलक्षण प्रभावी रहा है। ये संगीत ध्वनियाँ नाटक में नवचेतना निर्माण करती है। काम से थके हुए शरीरों में स्फुरण का संचार कराती है। दर्शकों को संगीत-नाटक का सा रसास्वाद कराती है। इस दृष्टि से "पोस्टर" की ध्वनि-संगीत योजना विशेष आकर्षक एवं प्रभावी रही है। इसप्रकार "पोस्टर" की मंचीय सज्जा में प्रकाश एवं दृश्यसज्जा की मौलिक विशेषताओं के साथ ही ध्वनि-संगीत का प्रयोग विशेष सराहनीय एवं मार्मिक रहा है।

१.३ रंगनिर्देश :

नाटककार द्वारा मंचन के लिए दिए जानेवाले विभिन्न निर्देश ही रंगनिर्देश कहलाते हैं। ये रंगनिर्देश नाट्य प्रस्तुति में विशेष

सहायक रहते है। रंगनिर्देशों की सहायता से नाटक रंगमंच पर सुगमता से अभिनीत होता है। नाटक में दृश्य की कठिणता, प्रतिकात्मकता, मंचीय आयामों की नवीनता, अभिनय विषयक संकेत आदि बातें समझाने में मंचीय निर्देश महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। नाटककार द्वारा दिए जानेवाले ये रंगनिर्देश सरल, सुबोध एवं स्पष्ट होने चाहिए, ताकि नाटककार की मंचीय धारणा, प्रस्तुतिविषयक दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाए। कमलाकर सारंगजी की राय में, "सही एवं सफल रंगनिर्देशों से परिपूर्ण नाटक पढ़ते समय ही पाठकों की आँखों के सामने दृश्य रूप धारण करने लगते हैं।"[१५] नाटक को सही अर्थ में समझाकर उसे दर्शकों तक पूर्णार्थ से पहुँचाने में रंगनिर्देश विशेष सहयोगी रहते हैं। इस दृष्टि से रंगनिर्देश नाटकीय सफलता में सहायक रहते हैं।

शेक्सपिअर के काल में स्थल-काल सूचक-फलक मंच पर रखकर रंगनिर्देश दिए जाते थे, क्योंकि तत्कालीन नाटकों में विशेषतया दृश्यसज्जा नहीं रहती थी। भारतीय प्राचीन नाटकों में संवादों के साथ ही संक्षिप्त निर्देश देने की पध्दति प्रचलित थी, जो अधिकतर अभिनय से सम्बन्धित हुआ करती थी। तत्कालीन नाट्य परम्परा में दृश्यविधान का वर्णन चरित्रों के संवादों द्वारा ही होता था। परिणामस्वरूप नाटककार संवादों द्वारा ही रंगनिर्देशों का काम लेते थे।"[१६] आधुनिक नाटकविधान में रंगनिर्देश मंचीय आयाम का एक आवश्यक अंग बन गया है। वैज्ञानिक सुविधाओं के कारण नाटक में ध्वनि,संगीत,प्रकाश,दृश्यसज्जा आदि के नये-नये तकनिक विकसित हो रहे हैं। आज के नाटककार भी इन्हीं सुविधाओं के प्रयोग पर आग्रही रहते हैं। इस दृष्टिसे अभिनय, दृश्य सज्जा, पार्श्वध्वनि, प्रकाश योजना विषयक मंचीय निर्देश नाटक का महत्वपूर्ण अंग बन गए हैं।

प्रायोगिक धरातल पर समकालीन नाट्यचेतना एवं रंगसंरचना के प्रवाह से समानता रखनेवाला "पोस्टर" मंचीय आयामों की नवीनता लेकर चलता है। रंगनिर्देश प्रस्तुत नाटक का विशेष आकर्षण रहा है। "पोस्टर" में डा. शेष ने प्रस्तुतिविषयक नये प्रयोग किए हैं। प्रस्तुति की सुगमता की दृष्टि से ये रंगनिर्देश विशेष सहायक रहे हैं। पोस्टर के रंगनिर्देशों की विशेषता निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत देखी जा सकती है।

१.४.१ मंचीय निर्देश :

"पोस्टर" के मंचीय निर्देश नाटक की प्रस्तुति में सहायक तो हैं, ही अपनी मौलिकता से वे नाटक का वैशिष्टयपूर्ण आकर्षण बन गए हैं। दृश्यसज्जा की सादगी, ध्वनि-संगीत की सरयता, प्रकाश योजना की नवीनता के प्रयोग में नाटककार के मौलिक निर्देश वैशिष्टयपूर्ण हैं।

पूरा नाटक कीर्तनशैली में चलता है, जिसमें नाटक के भीतर नाटक की योजना की गयी है। कीर्तन में प्रस्तुत आदिवासी कथा में, विभिन्न दृश्य प्रस्तुत होते हैं, जैसे पटेल के कारखाने में काम कर रहे आदिवासी, जंगल का परिवेश, पटेल की आलिशान कोठी का दृश्य, मजदूरों की बस्ती का दृश्य, आदि सारे दृश्यबंधों में मंचीय उपकरणों की आवश्यकता नहीं पड़ती। नाटककार की सशक्त भाषा, एवं मार्मिक संवाद ही दृश्यबंध को प्रस्तुत करते हैं। मंच पर लोकसंगीत के माध्यम से आवश्यक वातावरण की सृष्टि की जाती है। इस संदर्भ में नाटक के आरंभ में दिए गए मंचनिर्देश महत्त्वपूर्ण है, जैसे - "कीर्तनकार एक मिनट शांत खड़ा रहता है। तानपूरे की आवाज कुछ देर तक लगातार आती है।

कीर्तनकार और उसका साथी हाथ जोड़ते हैं। इसके बाद कीर्तनकार सस्वर श्लोक गाने लगता है।"[१७] कीर्तन शैली में नाट्य प्रस्तुति होने से, बीच-बीच में नाटक में दिए गए संगीत विषयक निर्देश विशेष सहयोगी रहे हैं।

नाटक में प्रकाशयोजना के सृजनात्मक प्रयोग विषयक दिए गए निर्देश बड़े मौलिक रहे हैं, जो समस्त नाटक में हर दृश्य में दिए गए हैं। निम्नलिखित रंगनिर्देशों में प्रकाशयोजना दृश्यपरिवर्तन में सार्थक रही है , "प्रकाश धीरे-धीरे कम होता है। कीर्तनकार का गीत चलता रहता है। जब प्रकाश लौटता है, तो कल्लु और उसकी और चैती बातें कर रहे हैं। ....."[१८]

इसप्रकार रंगनिर्देशों में नाटककार द्वारा दिए गए मंचसज्जा विषयक निर्देश नाट्यप्रस्तुति की दृष्टि से बड़े सार्थक बन पड़े हैं।

१.३.२ अभिनय विषयक निर्देश :

"पोस्टर" में अभिनय की दृष्टि से भी नाटककार ने विभिन्न रंगनिर्देश दिए हैं। अभिनय की दृष्टि से "पोस्टर" में माईम का अधिक मात्रा में प्रयोग किया गया है। लोकनृत्य में भी सामूहिक अभिनय की विशेषता विद्यमान रही है। नाटक में आहार्य अभिनय विषयक निर्देश नहीं दिए गए हैं। पात्रों की वेशभूषा विषयक कोई भी संकेत नहीं मिलता। केवल भूमिका में कीर्तनकार की पारंपारिक वेशभूषा का उल्लेख है। शायद नाटककार यह बात पूरी तरह से निर्देशक पर छोड़ना चाहते हैं। जयदेव हट्टंगडीजी ने भी अपनी दृष्टि के अनुसार पात्रों की वेशभूषा निश्चित की थी, जिसमें उन्होंने पात्रों की वेशभूषा साधारण ही रखी थी।

नाटक में अंगिक या कायिक अभिनय विषयक निर्देश स्थान-स्थान पर दिए गए हैं, जो अभिनेता एवं निर्देशक के लिए सहाय्य-भूत रहे हैं। जैसे - "सुखलाल कान देता है। पटेल उसे कुछ समझाता है। सुखलाल कभी आश्चर्य, कभी चिंता, कभी खुशी का अभिनय करता है।"[१९] इसप्रकार नाटक में हर दृश्य में, पात्र के क्रियाकलापों में ये अंगिक अभिनय विषयक निर्देश लक्षणीय बन पड़े हैं। वाचिक अभिनय में पात्रों के संवादों से काम लिया गया है। सभी पात्र अपनी परिवेशागत, स्वभावगत बोलियों का प्रयोग करते हैं। अत: वाचिक अभिनय के संदर्भ में अलग से निर्देश देने की आवश्यकता नहीं पडती। शायद नाटककार का भी यही उद्देश्य रहा हो।

इसप्रकार अभिनय की दृष्टि से नाटक में आवश्यकता के अनुसार रंगनिर्देश दिए गए हैं। आहार्य अभिनय विषयक कोई निर्देश नहीं मिलते। हो सकता है, इस संदर्भ में नाटककार निर्देशक को पूरी स्वतंत्रता देना चाहते हों। माईम एवं नृत्यनाट्य शैली में समूह अभिनय की विशेषता उल्लेखनीय रही है।

१.३.३ प्रतीक विषयक निर्देश :

प्रतीक अंग्रेजी शब्द 'Symbol' का पर्यायीवाची है, जिसका अर्थ है, संकेत, प्रतिरूप, निशान आदि। नाटक में लेखक ने प्रतिकात्मकता का भी प्रयोग किया है, अत: उस दृष्टि से अर्थनिष्पत्ति के लिए प्रतीक विषयक संकेत अभिनेयता में सहायक रहे हैं। जैसे नाटक में "पोस्टर" प्रतीकात्मक है। वह माईम से चिपकाया जाता है। वह नाटक में मजदूरों के संघर्ष का, एकत्व का प्रतीक बनकर प्रस्तुत होता है। उस संदर्भ में नाटककार के निर्देश महत्त्वपूर्ण है, जो नाटक में सांकेतिकता के

प्रयोग में रंगकर्मीयों के लिए सुलभ रहे हैं। इसीतरह आरंभ में गणेशवंदना में कीर्तनकार का साथी गणपति का मास्क लगाकर खड़ा होता है, बाद में वही पात्र भ्रष्टाचारी नेता का रूप प्रस्तुत करता है। जैसे, "गणपति का मास्क लगानेवाला पात्र अब चूड़ीदार पाजामा, कुर्ते में है। सिर पर टोपी, मुख पर चौड़ी मुसकान और गले में मोटी माला डाले हैं। उसके चार हाथ हैं - एक में कुर्सी है, दुसरे में पिस्तौल है, तीसरे में थैली है, चौथे में टेलिफोन रिसीवर है।"[२०] इसमें व्यंग्यशैली का मार्मिक प्रयोग किया गया है। इससे उचित नाटकीय प्रभाव निमार्ण करने में तथा कथ्य की सरल प्रस्तुति में स्वाभाविकता एवं प्रभविष्णुता आ गयी है।

इसप्रकार "पोस्टर" के रंगनिर्देश रंगमंचीय प्रस्तुति में विशेष सहायक एवं प्रभावकारी रहे हैं, जिसमें नाटककार की प्रायोगिक सूझ-बूझ का अच्छा परिचय मिल जाता है।

## २. "पोस्टर" नाटक में अभिनेयता :

नाटक साहित्य की प्राचीनतम विधा है, जो अपनी प्रायोगिक विशेषता के कारण अन्य विधाओं से स्वतंत्र रही है। अभिनेयता नाटक का एक महत्वपूर्ण अंग है। उसके नाटक नामाभिधान में ही उसकी अभिनय वृत्ति निहित है। "पाणिनी ने नाट्य शब्द की व्युत्पत्ति "नट्" धातु से मानी है और "नट" का अर्थ है अभिनय करना।"[२१] "अभिनय शब्द की व्युत्पत्ति अभि + नी धातु से मानी गयी है। अभि का अर्थ है "की ओर" तथा नी-नय् अर्थात "ले जाना", या "वहन करना" अर्थात् दर्शकों के सामने जो क्रियाएं दर्शाई जा रही है उन क्रियाओं की सत्यता की ओर ले जानेवाली क्रिया ही अभिनय है।"[२२] अर्थात अभिनेयता नाटक की सर्वोपरी विशेषता है, क्योंकि नाटककार का कथ्य कलाकारों

के सक्षम अभिनय द्वारा ही दर्शकों तक पहुँचाता है। अभिनय के बिना नाटक की प्रस्तुति ही संभव नहीं है। इस संदर्भ में नेमिचन्द्र जैन का कथन यहाँ विचारणीय है, "अभिनय प्रदर्शन के बिना नाटक की सार्थकता अथवा सम्पूर्णता नहीं बल्कि जो अभिनेय नहीं, अभिनयोपयुक्त नहीं, उसे नाटक ही नहीं कहा जा सकता। ..... वही अनुभूति यथार्थ नाट्यात्मक अनुभूति है, जो दृश्य हो सके, जो अभिनेताओं द्वारा स्थापित और मूर्त करके व्यक्त की जा सके।"[२३] अर्थात् अभिनय संपन्न नाटक ही सही अर्थ में नाटक है। अभिनय को छोड़कर नाटक का विचार ही नहीं हो सकता।

"पोस्टर" नाटक में नाटककार ने अभिनय तत्व को लेकर कई मौलिक प्रयोग किए हैं। उनके अन्य नाटकों की भाँति इस नाटक में भी अभिनय, अभिनेताओं की कसौटी रहा है। अभिनय की दृष्टि से प्रस्तुत नाटक विभिन्न आयाम लेकर चलता है। "डा. शेष नाटक की कथावस्तु में ऐसे ही प्रसंगो का चुनाव करते है कि जिनकी कायिक, वाचिक, मानसिक अभिनय द्वारा दृश्याभिव्यक्ति हो। उस प्रसंग को मंच पर दिखाने का अधिकाधिक अवसर अभिनेता को मिले।"[२४] "पोस्टर" अभिनयगत विभिन्न प्रयोगों के द्वारा नितांत नयापन प्रस्तुत करता है। नृत्,नृत्य,नाट्य का मनोहारी संगम "पोस्टर" की अभिनयगत अनोखी विशेषता रही है। इसमें अभिनय के भारतीय तत्व - अंगिक, वाचीक, आहार्य, सात्वीक अभिनय के साथ ही अभिनेय पाश्चात्य नाट्य शैलीयोंका जैसे - माईम,बॅले, मास्क आदि का समावेश अनूठा बन पड़ा है, जिससे "पोस्टर" एक साथ अभिनयगत सामुहिक प्रभाव को संप्रेषित करता है। "पोस्टर" की अभिनयगत विशेषताएं तथा अभिनयविषयक नूतन प्रयोग निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत देखे जा सकते हैं।

## २.१ व्यक्ति तथा समूह अभिनय की विशेषता :

"पोस्टर" नाटक में कुल मिलाकर सैंतीस पात्र मंच पर अभिनय करते हैं, जिनमें अधिकांशत: सामुहिक रूप में आते हैं। अत: इसमें व्यक्ति अभिनय के साथ समूह-अभिनय की विशेषता भी विद्यमान रही है। व्यक्ति अभिनय में कीर्तनकार का अभिनय विशेष उल्लेख है। नाटक में कीर्तनकार की भूमिका निभानेवाले अभिनेता को अभिनय संपन्नता के साथ अच्छा गायक भी होना चाहिए। कीर्तनकार इस नाटक का सूत्रधार है। साथ ही आदिवासी कथा के स्वामी अखंडानंद एवं गुरूजी की भूमिकाएं भी वही प्रस्तुत करता है। अर्थात् एक ही पात्र यहाँ चार भूमिकाओं को को अभिनीत करता है। इस दृष्टि से कीर्तनकार की भूमिका करनेवाले अभिनेता का अभिनय में निपुण होना परम आवश्यक है। यहाँ नाटककार ने एक पात्र द्वारा अधिक भूमिकाओं का अभिनय करवा कर एक नया प्रयोग किया है, जो अभिनेता एवं निर्देशक के लिए अभिनेय कसौटी भी रहा है। निर्देशक श्री. जयदेव हट्टंगडी ने यहाँ कीर्तनकार की भूमिका में दो कलाकारों को प्रस्तुत किया था - चंद्रशेखर कामेरकर और श्रीकांत दादरकर। वही पात्र आगे स्वामी अखंडानंद (चंद्रशेखर कामेरकर) और गुरूजी (श्रीकांत दादरकर) की भी भूमिकाएं अभिनीत करते हैं। यहाँ उन्होंने कीर्तनकार को कथाकार के रूप में लिया था, क्योंकि उनकी दृष्टि से यहाँ कीर्तनकार की भूमिका मुख्य रूप से कथाकार के रूप में ही रही है।"[२१] कीर्तनकार के कुशल अभिनेय के बल पर ही संपूर्ण नाटक की अभिनेय सफलता अवलंबित है, क्योंकि कीर्तनकार में समस्त श्रोताओं को नियम समय तक बाँधे रखने की अपूर्व शक्ति होती है। यह अपूर्व शक्ति उसकी अंगभूत अभिनेय कला है। लेखक की भूमिका के अनुसार "महाराष्ट्र के कीर्तनकार एक अर्थ में "वन मैन थियेटर" का बहुत ही अच्छा पारंपारिक रूप है। ..... अभिनय उनकी

पूरी कला में विशेष अहमियत रखता है। इसीलिए अकेला कीर्तनकार जब अपनी कलात्मक उंचाईयों को छूता है तो दर्शकों को पूरी तरह बांधे रखता है।"[२६] यहाँ कीर्तनकार की व्यक्ति भूमिका में अभिनय की कसौटी दृष्टव्य है। इसीतरह कीर्तनकार का साथी ही आदिवासी कथा में अखंडानंद का चेला बन जाता है। कीर्तनकार की बातों का विरोध करने-वाला युवा ही बाद में संघर्षशील कल्लु की भूमिका अभिनीत करता है। एक ही पात्र द्वारा अधिक भूमिकाएं अभिनीत कर डा. शेष ने यहाँ अभिनयगत मौलिक प्रयोग किया है।

व्यक्ति अभिनय के साथ ही समूह अभिनय की विशेषता "पोस्टर" का अनोखा आकर्षण रही है। सामूहिक लोकगीत, लोकनृत्य की प्रस्तुति, कीर्तन सुनने की सामुहिक क्रिया, कारखाने में समूह से काम कर रहे मजदूर, समूह के साथ पटेल की शोषणनीति का विरोध करनेवाले आदिवासी मजदूर आदि दृश्यबंधो में समूह अभिनय उल्लेखनीय है। यहाँ समूह ही एक पात्र के रूप में आता है। इस दृष्टि से सभी पात्रों का अभिनय एक होना अत्यंत आवश्यक है। इस समूह अभिनय में नृत्त, नृत्य,एवं नाट्य का मनोहारी संगम हुआ है, जो नाटक में नवरस भर देता है। लोकगीत एवं लोकनृत्य में नृत्य अभिनय की विशेषता है, तो समूह से काम कर रहे मजदूरों में नृत्त अर्थात् पाश्चात्य माईम नाट्यशैली का प्रयोग हुआ है। इसी माईम में भारतीय अभिनय वृत्ति अंगिक अभिनय की विशेषता विद्यमान रही है। लयपूर्ण अंगसंचालन, अंगविक्षेप, भावात्मक अभिनय के समन्वय को लेकर चलनेवाला यह समूह अभिनय, "पोस्टर" का अनोखा आकर्षण रहा है, जो अभिनय की दृष्टि से एक विशेष प्रयोग है।

२.२ वेशभूषा :

स्वाभाविक अभिनय की प्रस्तुति में वेशभूषा का विशिष्ट महत्त्व रहता है। पात्रानुकूल वेशभूषा नाटक में उचित वातावरण की निर्मिति में सहायक रहती है। पात्र, परिस्थिति देशकाल वातावरण के अनुसार की गयी वेशभूषा नाटक की अभिनेय प्रस्तुति में सजीवता लाती है। अत: अभिनय के अंतर्गत वेशभूषा का विचार महत्वपूर्ण बन जाता है। भारतीय नाट्यविधान में वेशभूषा का आहार्य अभिनय के अंतर्गत अलग से विचार किया गया है। वेशभूषा व्यक्ति के व्यक्तित्व की प्रथम पहचान है, वह मनुष्य संस्कृति का पहला परिचय है। वेशभूषा नाट्यप्रस्तुति में दर्शकों को वास्तवता का पूर्णाभास देती है। नाट्यप्रयोग को प्रभावी बनाने में सहायक रहती है। इसी के अंतर्गत पात्रों की केशभूषा, रूपसज्जा भी समाविष्ठ होती है।

"पोस्टर" कीर्तनशैली में प्रस्तुत रचना है, जिसमें नाटक के भीतर नाटक के रूप में आदिवासी कथा प्रस्तुत होती है। अत: नाटक में किसी विशेष प्रकार की वेशभूषा आवश्यक नहीं है। कीर्तनकार अपनी पारंपारिक वेशभूषा में प्रस्तुत हो सकता है, अर्थात पारंपारिक कुर्ता, धोती, सिर पर पगडी आदि। महाराष्ट्रीयन कीर्तनकार की यही वेशभूषा रहती है। कीर्तनकार के श्रोता, जो बाद में आदिवासी कथा के मजदूरों की भूमिका प्रस्तुत करते हैं, उनकी वेशभूषा भी आम मजदूरों की साधारण वेशभूषा हो सकती है। वेशभूषा की दृष्टि से यहाँ कोई रंगीन या आकर्षक पहनावा आवश्यक नहीं है, बल्कि ऐसा पहनावा नाटक में कृत्रिमता ला सकता है। नाटक की स्वाभाविक प्रस्तुति की दृष्टि से साधारण, पात्रानुकूल वेशभूषा ही यहाँ औचित्यपूर्ण रहेगी। निर्देशक श्री.जयदेव हट्टंगडीजी ने भी यहाँ कीर्तनकार के लिए सफेद धोती, कुरता एवं सिर पर पगडी की जगह साफा का प्रयोग किया था। स्वामी अखंडानंद के लिए भी कोई

स्वतंत्र वेशभूषा नहीं थी। कथाकार चंद्रशेखर कामेरकरजी ही अखंडानंद की भूमिका करते थे। अखंडानंद की भूमिका के समय वे नेपथ्य में जाकर सिर पर का साफा उतारते, और गंजे, धोती-कुरते की पोशाक में, कँधे पर एक शाल डाले मंच पर प्रस्तुत होते थे।"[२७] इसप्रकार "पोस्टर" में निर्देशक श्री. जयदेव हट्टंगडी ने कथ्य के अनुसार, पात्रानुकूल वेशभूषा का ही प्रयोग किया था।

इसप्रकार "पोस्टर" की वेशभूषा पात्रानुकूल, कथ्य के अनुसार औचित्यपूर्ण तथा नाट्य अभिनेय में पूरी तरह से सहयोगी रही है। वेशभूषा की सादगी, पोस्टर की अभिनयगत एक अलग विशेषता है।

## २.३ अभिनय संपन्न भाषा एवं संवाद :

अभिनय संपन्न भाषा एवं संवाद "पोस्टर" की मौलिक विशेषता रही है। नाटक, अभिनेय भाषा एवं संवादो द्वारा दर्शकों तक पहुँचता है। इस दृष्टि से नाट्य भाषा का अभिनेयता से युक्त होना, संवादो का सरल, सुबोध एवं नाटयार्थ को उद्घाटित करने की क्षामता से युक्त होना, नितांत आवश्यक है। अगर इनमें अभिनय क्षामता न हो, तो नाटक निरी कथा बनकर रह जायेगा। अत: नाटककार को अभिनय तत्व को ध्यान में रखकर नाट्यभाषा एवं नाटकीय संवादों का स्वरूप निश्चित करना पडता है। नाटकीय भाषा काव्यभाषा की तरह संकेतात्मक तथा अलंकारप्रधान नहीं होती और न ही वह उपन्यास या कहानी की तरह वर्णनप्रधान रहती है। वह तो मानवी जीवनबोध से जुड़ी होती है। दृश्यात्मकताउसकी मौलीक विशेषता रहती है। अन्य विधाओं की तुलना में नाटक दर्शकों के सामने रंगमंच पर अभिनीत होता है। नाटक की अनुभूति प्रत्यक्ष रहती है। अत: नाटक में वर्णनविस्तार के लिए कोई स्थान नहीं

रहता। नाटक एक रंगमंचीय विधा है। अत: उसके अनुसार ही नाटककार को मार्मिक, अर्थवाही, कुतूहलप्रधान, अभिनेय वृत्ति से युक्त कथोपकथन रखने पडते हैं। भाषा में भी पात्रानुकूलता, वातावरणाप्रधानता का खयाल रखना पडता है। तभी वह नाटक सशक्तता से खेलक सकता है।

अधिक लम्बे संवाद, स्वगतकथन, भाषा की क्लिष्टता, अलंकारप्रधानता अभिनय में कृतित्रमता निर्माण करते हैं। प्रसाद के नाटकों में इसीप्रकार की अभिनयगत कठिणाई दिखाई देती है। "बोस्टर" के संवाद एवं भाषा इन दोषों से सर्वथा दूर हैं। "बोस्टर" के संवाद संक्षिप्त दृश्यप्रधान मार्मिक एवं सुबोध रहे हैं। इसीकारण पात्रों के अभिनय में स्वाभाविकता आ गयी है। भाषा भी पात्रानुकूल है। मजदूरों की भाषा में अंचलविशेषता, देहाती परिवेश की खूबी नजर आती है। उनकी भाषा बोलचाल की आम भाषा रही है, जो यथार्थता की परिचायक है, और नाटक को अभिनेय बनाने में विशेष सहायक रही है। छोट-छोटे संवाद नाट्यार्थ को सहजता से दर्शकों तक पहुँचाने में सफल रहे हैं, जैसे -

"मजदूर-३ : बोलो, किधर लगाऊँ ?
मजदूर-२ : इधर .....
मजदूर-५ : इधर नहीं ..... उधर .....
मजदूर-६ : न इधर ..... न उधर .....
मजदूर-३ : तब किधर ?
कल्लु : इधर लगाओ।
मजदूर-२ : हां .... इधर ठीक रहेगा। साले की निगाह सीधे इसपर पडेगी। खुस हो जायेगा।"[२८]

इसप्रकार, वाचिक अभिनय की दृष्टि से भी "पोस्टर" एक मौलिक प्रयोग लगता है। नाट्यभाषा की सशक्तता, कथोपकथनों का यथार्थता बोध, सादगी आठवें दशक के नाटक की मौलिक विशेषता रही। भाषा की दृष्टि से आठवें दशक का नाटक जनसाधारोन्मुखी बना। उसके कथोपकथन राजमहल से बाहर निकलकर आम आदमी के जीवनबोध् को व्यक्त करने लगे। उसमें यथार्थनुकूलता आ गयी, जो अभिनयगत सहजता एवं स्वाभाविकता की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। "पोस्टर" के संवाद एवं भाषा इस दृष्टि से विरोध सार्थक हैं। अत: वाचिक अभिनय की दृष्टि से भी "पोस्टर" के कथोपकथन तथा भाषा, मार्मिक एवं सशक्त हैं।

प्रकाश, ध्वनि, संगीत की तरह ही अभिनय की दृष्टि से भी "पोस्टर" एक नया प्रयोग रहा है। अभिनय में व्यक्ति अभिनय के साथ ही समूह अभिनय की सफल प्रस्तुति "पोस्टर" की निजी विशेषता है। एक ही अभिनेता द्वारा अधिक भूमिकाओं का निभाना अभिनेयता की दृष्टि से एक कसौटी एवं नावीन्यपूर्ण प्रयोग रहा है। नृत्त, नृत्य एवं नाट्य के समावेश से "पोस्टर" का अभिनय पक्ष सरस एवं प्रभावी बन गया है। इसमें भारतीय एवं पाश्चात्य अभिनयगत वृत्तियों का स्वाभाविक सामंजस्य नाटक में सात्विक प्रभाव निर्माण करते हैं। दर्शकों तक सहजता से नाट्यनुभूति संप्रेषित करते हैं। इसप्रकार "पोस्टर" अभिनेय पक्ष को लेकर भी एक नवीन, सफल एवं प्रभावी प्रयोग रहा है।

३. कीर्तन शैली का प्रयोग :

डा. शेष एक नवीनताप्रेमी, प्रयोगधर्मी नाटककार रहे हैं। उनका हर नाटक रंगमंचीय दृष्टि से एक नया प्रयोग रहा। "पोस्टर" नाटक में नाटककार की इसी प्रयोगधर्मी रुचि का परिचय मिल

जाता है। "पोस्टर" में अभिनय, मंचसज्जा, शिल्पविधाक की नवीनता के साथ ही, शैली की दृष्टि से भी नूतन प्रयोग किया गया है। महाराष्ट्र की कीर्तन शैली में लिखा गया यह एक मौलिक नाटक है।

आठवें दशाक का नाटक नाट्यधर्मी परंपरा के साथ ही लोकधर्मी परंपरा का निर्वाह करनेवाला नाटक है। इस दशाक में हिंदी नाटक लोककला, लोकसंस्कृति, लोकजीवन के अधिक निकट आया। हिंदी के साथ ही अन्य भाषाओं में भी लोकनाटक की शैली अपनाकर नाट्यगत विविध प्रयोग होने लगे। नौटंकी, दशावतारी, रास, स्वांग माच आदि लोकनाटक की शैलियों में नाटक लिखे जाने लगे। नवीनता प्रेमी डा. शेष इससे अलग कैसे रहते ? उन्होंने भी अपनी समकालीन नाट्यचेतना के साथ रहकर लोकनाटक की शैली को अपनाया। नौटंकी शैली में "अरे मायावी सरोवर" लिखकर उसकी सफल प्रस्तुति के बाद, महाराष्ट्र की कीर्तन शैली में "पोस्टर" लिखा, जो शायद, हिंदी नाट्य-साहित्य में सबसे प्रथम प्रयास रहा है।

"पोस्टर" महाराष्ट्र की कीर्तनशैली में प्रस्तुत होता है। कीर्तनशैली के अनुरूप ही इसमें भजन, भक्ति रस के पद, सद्गुरु वंदन, गणेशावंदन आरती, श्लोक आदि का समावेश हुआ है। कीर्तनकार ही नाटक का सूत्रधार है। प्रधान पात्र तथा सूत्रधार के रूप में कीर्तनकार का प्रयोग सर्वथा नवीन है। नाटक एक रंगमंचीय विधा है। सामाजिक का मनोरंजन करना उसका प्रधान उद्देश्य है। इस दृष्टि से नाटक में कीर्तन जैसी गंभीर शैली का प्रयोग एक अनोखी बात लगती है। फिर भी, "पोस्टर" की रंगमंचीय प्रस्तुति विशेष सफल रही है। वह रंगमंच पर सरस, सुगम और सफलता से कई बार खेला गया है। निर्देशक श्री. जयदेव हट्टंगडी ने इसके १२५ प्रयोग किए, जो उसकी असाधारण मंचीय सफलता

को दर्शाते हैं।

कीर्तनकार ब्रह्मज्ञान का व्याख्याकार होता है। वह शास्त्र, पुराण, भक्ति संगीत, शास्त्रीय नाट्य संगीत का ज्ञाता एवं मर्मज्ञ होता है। अपने निरूपण कौशल से कीर्तन में, वह समस्त श्रोताओं को बांधे रखता है। लेखक के शब्दों में, "वह वन मैन थियेटर" का अच्छा पारंपारिक रूप है। अत: कीर्तनकार को ही नाटक का सूत्रधार कथाकार एवं प्रधान पात्र के रूप में स्वीकार कर डा. शेष ने एक नया प्रयोग किया है। नाटककार का यह प्रयास सर्वथा मौलिक, प्रशंसनीय एवं कुशल रहा है।

इसप्रकार "पोस्टर" में मंचन, शिल्प की प्रायोगिक नवीनता की भाँति ही कीर्तनशैली का प्रयोग भी नवीन, मौलिक, आकर्षक एवं मार्मिक रहा है।

४. निष्कर्ष :

१९७७ में लिखा हुआ "पोस्टर" प्रायोगिक दृष्टि से एक बहुचर्चित नाटक रहा है। प्रस्तुत नाटक में लोकधर्मी एवं नाट्यधर्मी दोनों ही परम्पराओं का सफलता से निर्वाह हुआ, जो आठवें दशक के नाटक की मौलिक विशेषता है। शैली, शिल्प, प्रस्तुति में नितांत नवीनता रखनेवाला यह नाटक डा. शेष की नाट्यप्रतिभा का मौलिक सृजन रहा है। रंगमंचीय आयामों की सादगी, दृश्यबंध की सरलता, प्रकाशयोजना का सृजनात्मक प्रयोग, ध्वनि-संगीत का कलात्मक संयोजन नाटक को रंगमंचीय सफलता का सेहरा पहनाते हैं। मंचन के स्तर पर "पोस्टर" की सादगी नाटककार की नाटकीय कुशलता का प्रमाण है।

अभिनेयता "पोस्टर" की महती विशेषता रही है। अभिनयगत नूतन एवं मौलिक प्रयोग नाटक को ऊँचा उठाते हैं। अभिनेयता की दृष्टि से नाटक में भारतीय तथा पाश्चात्य अभिनय वृत्तियों का एकात्म प्रयोग नाटक की स्वतंत्र पहचान रही है। अभिनय संपन्न भाषा तथा छोटे, अर्थबोध संवाद आठवें दशक के नाटक की मौलिकता है। "पोस्टर" में इसी भाषागत सशक्तता तथा मार्मिक संवादो का प्रयोग हुआ है। "पोस्टर" की दृश्यसज्जा एवं रूपसज्जा की सरलता नाटक को स्वाभाविक बनाती है। नाट्यानुभूति को यथार्थ युगबोध से जोड़ देती है। नाटक के भीतर नाटक का प्रयोग कर डा. शेष ने शिल्पगत नवीनता का परिचय दिया है। कीर्तन जैसी गंभीर शैली का अपनाकर भी नाटक की सफल प्रस्तुति में नाटककार की नाट्यविषयक कुशलता दिखाई देती है। कीर्तन के साथ नाटक में लोकसंगीत का समावेश नाटक की रसना को बढ़ाते हैं। लोककला, लोकसंस्कृति, लोकगीत, लोकनृत्य, लोकसंगीत, लोकजीवन को लेकर चलनेवाला यह नाटक नाटककार की नाट्यविषयक गहरी रुचि एवं नाट्यप्रतिभा की ऊँची उड़ान है।

हिंदी नाटक का आठवा दशक प्रायोगिक विशेषताओं को लेकर आया। कथ्य, शिल्प, भाषा, शैली, प्रयोग सभी दृष्टि से उसमें नूतन प्रयोग होने लगे। इतिहास-पुराण को छोड़कर वर्तमान युगबोध की अभिव्यक्ति उसकी मौलिक विशेषता रही। "पोस्टर" इस दृष्टि से एक विकसनशील कदम रहा है। इस दशक में मोहन राकेश, डा.जगदीशचंद्र माथुर, डा.लक्ष्मीनारायण लाल, गिरिश रस्तोगी, ज्ञानदेव अग्निहोत्री, धर्मवीर भारती, बादल सरकार, गिरीश कर्नाड, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना आदि प्रयोगधर्मी नाटककार सामने आये। इन आधुनिक नाटककारो ने नाटक की रचना धर्मिता के साथ-साथ उसकी मंचीयता के विकास में सशक्त

प्रयास किए। इन आधुनिक नाटककारों में डा.शेष का भी महत्त्वपूर्ण स्थान रहा। समकालीन नाट्यचेतना का खयाल रखकर डा. शेषने अपने नाटकों में नितनूतन प्रयोग किए। अपने समय की माँग के अनुसार, परिवेश के अनुसार नाट्यसृजन में वे रत रहे। आधुनिक हिंदी नाटक के रंगमंचीय विकास में डा.शेष का भी महत्त्वपूर्ण योगदार रहा। "पोस्टर" इसी समकालीन नाट्यचेतना का निर्वाह करनेवाला सशक्त नाटक है।

प्रायोगिकता का डॉ.शेष के नाटकीय व्यक्तित्व की स्वतंत्र पहचान रही। "पोस्टर" इसी पहचान की मौलिक अभिव्यक्ति है। आठवें दशक का नाटक लोकधर्मी-नाट्यधर्मी परंपरा का निर्वाह करनेवाला नाटक है। "पोस्टर" में इसका अद्भुत समन्वय नाटककार की नाट्यप्रतिभा का मौलिक सृजन है। "पोस्टर" डा.शेष के तथा आठवें दशक के नाटक साहित्य की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। इसप्रकार "पोस्टर" में डा.शेष की नाट्यधर्मी प्रतिभा का चरम विकास दिखाई देता है।

## संदर्भ


१. डा. मधुकर हसमनीस - डा. शंकर शेष के नाटकों का अनुशीलन-पृ.क्र. २६९, २७०

२. आ. सीताराम चतुर्वेदी - सं. डा. शिवराम माली, डा. सुधाकर गोकाककर - नाटक और रंगमंच - पृ.क्र. ३,४

३. नेमिचन्द्र जैन - रंगदर्शन - पृ.क्र. २१

४. डा. सुनीलकुमार लवटे - नाटककार शंकर शेष - पृ.क्र. १८

५. डा. सुरेश गौतम, डा. वीणा गौतम - राजपथ से जनपथ : नटशिल्पी शंकर शेष - पृ.क्र. २२१,२२२

६. डा. शंकर शेष - "पोस्टर" की भूमिका के आधार पर

७. डा. सुनीलकुमार लवटे - नाटककार शंकर शेष - पृ.क्र. १०३,१०२

८. डा. बाबासाहेब दुलाजीराव पोवार - डा. लक्ष्मीनारायण लाल के नाटकों में मंचीयता - पृ.क्र. १२५

९. निर्देशक श्री. जयदेव हट्टंगडी से साक्षात्कार के आधार पर

१०. डा. केदारनाथ सिंह - हिंदी के प्रतीक नाटक और रंगमंच-पृ.क्र. ६२

११. "पोस्टर" की सुवर्ण महोत्सवी स्मारीका के आधार पर

१२. डा. शंकर शेष - पोस्टर - की भूमिका के आधार पर

१३. डा. शंकर शेष - पोस्टर - पृ.क्र. ११२,११३

१४. डा. शंकर शेष - पोस्टर - पृ.क्र. ११२,११३

१५. डा. बाबासाहेब पोवार - डा.लक्ष्मीनारायण लाल के नाटकों में मंचीयता - पृ.क्र. ७१

१६. डा.बाबासाहेब पोवार - डा.लक्ष्मीनारायण लाले के नाटकों में मंचीयता - पृ.क्र. ६९,७०

१७. डा.शंकर शेष - पोस्टर - पृ.क्र. ८१

१८. डा. शंकर शेष - पोस्टर - पृ.क्र. १२३

१९. डा. शंकर शेष - पोस्टर - पृ.क्र. ११०

२०. डा. शंकर शेष - पोस्टर - पृ.क्र. ८४

२१. डा. शिवराम माली, सं.डा.शिवराम माली, डा.सुधाकर ओकाककर - नाटक और रंगमंच -पृ.क्र. २२७

२२. डा. बाबासाहेब पोवार - डा.लक्ष्मीनारायण लाल के नाटकों में मंचीयता - पृ.क्र. ९२

२३. नेमिचन्द्र जैन - रंगदर्शन - पृ.क्र. ४०

२४. डा.मधुकर हसमनीस - प्रयोगशील नाटककार डा.शंकर शेष -पृ.क्र. ११२

२५. निर्देशक श्री जयदेव हट्टंगडी से साक्षात्कार के आधार पर

२६. डा. शंकर शेष - पोस्टर की भूमिका के आधार पर

२७. निर्देशक श्री. जयदेव हट्टंगडी से साक्षात्कार के आधार पर

२८. डा. शंकर शेष - पोस्टर - पृ.क्र. १२९